शहरीकरण के कुप्रभाव

Shaharikaran ke Kuprabhav

यह एक स्वाभाविक एंव प्राकृतिक नियम है कि क्रमश: गांव-कस्बों में और कस्बे ही विकास करके शहरों के रूप धारण कर लिया करते हैं। शहर या नगर विकास की प्रक्रिया में पडक़र महानगरों का रूप धारण कर लिया करते हैं। सृष्टि का अब तक का विकास-क्रम इसी नियम का साकार स्वरूप है। हम भारत की राजधानी दिल्ली का उदाहरण भी ले सकते हैं। सन 1947 में जब भार स्वतंत्र हुआ, परकोटे में घिरी दिल्ली ही दिल्ली थी। हां, नई दिल्ली का अपना अलग और सीमित-सा आकार-प्रकार अवश्य बनने और उभरने लगा था। उन दिनों दरियागंज जैसे इलाके में दिन के चौड़े प्रकाश में भी बातचीत करने के लिए आदमी खोजना पड़ता था। वाहनों में से तो इक्का-तांगा और साइकिल आदि ही इधर-उधर आते-जाते दिखाई दिया करते थे। सारे दिन में यदि एक-आध कार सडक़ पर दिखाई दे जाती, तो उसे देखकर आश्चमिश्रित आनंद का अनुभव किया जाता था। परंतु आज? तब की परिस्थितियों में आज गुणात्मक जिसे आकाश-पाताल का अंतर कहा जाता है, वह आ चुका है। तब आदमी खोजना पड़ता था, आज आदमी से बचना ओर बचकर चलना पड़ता है। तब सडक़ पार करने के लिए बार दस-पंद्रह मिनटों तक प्रतीक्षा करनी पड़ जाती है। पार करते समय तेजी और सावधानी से गुजरना पड़ता है। वह सब देख-सुन प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ? सहज उत्तर है कि लोगों में शहरों-नगरों के प्रति आकर्षण तो बढ़ा ही है, कुछ परिस्थितियां भी ऐसी हो गई कि देहातों और कस्बों में परंपरागत उद्योग-धंधे और रोजी-रोटी की जुगाड़ न होने के कारण लोगों को नगरों की तरफ आना पडऩे लगा। इस परिस्थिति ने जहां नगरों को महानगर बना दिया है, वहां कस्बों और गांवों का शहरीकरण करना भी साथ ही आरंभ कर दिया है।

शहरीकरण का एक अन्य कारण भी है। कस्बों का शहर और शहरों का नगर और महानगरों में परिवर्तन होने का अर्थ है आबादी का दबाव बढऩा। उस दबाव को झेलने के लिए आवश्यक है कि कस्बों-शहरों आदि का विकास हो। होना तो यह चाहिए था कि विकास की प्रक्रिया नियोजित रूप से चलती, परंतु ऐसा न होकर सभी कुछ अनियोजित ही अधिक हुआ एंव अब भी लगातार हो रहा है। विकास का अर्थ फैला भी है। सो कस्बों-नगरों का फैलाव

कुछ इस प्रकार हुआ है कि मीलों दूर के गांव भी उस विकास में समाकर अपना भौतिक अस्तित्व एंव स्वरूप ही नहीं आंतरिक या सांस्कृतिक स्वरूप भी गंवा चुके हैं। जो हो, विकास की प्रक्रिया को एक प्रकार से उचित एंव एनिवार्य ही कहा जाएगा। परंतु इस प्रकार के विकास या गांवों के शहरीकरण के कुप्रभाव सामने तब आते हैं, जब सब कुछ अनियोजित होने के कारण उन सुविधाओं का भी अभाव हे जाता या हो गया है प्राथमिक स्तर पर शहरों में जिनका होना अनिवार्य माना गया है। जैसे आबादयिों के उचित उचित रूप से शौच आदि निवृत्त होने की व्यवस्था, पीने के पानी की व्यवस्था, सफाई की व्यवस्था, बिजली की व्यवस्था, खुले हवादार आवासों की व्यवस्था, स्कूलों, पार्कों, स्वास्थ्य एंव मनोरंजन केंद्रों की व्यवस्था आदि। इस प्रकार की व्यवस्थाओं का अभाव किस प्रकार के कुप्रभाव डालता और कौन-कौन सी समस्यांए खड़ी कर देता है, यह हम दिल्ली जैसे महानगरों में तो रात-दिन अनुभव करते ही है, उन कस्बों में भी अनुभ्ज्ञव करते हैं जहां कुछ औद्योगिक विकास करके जो शहर बन गए या फिर बनने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

शहरीकरण और शहरों की दुव्र्यवस्था की प्रवृति के कारणों में सरकारी नीतियों की अदूरदर्शिता भी विद्यमान है। किसी कार्यालय या मंत्रालय का संबंध विशुद्ध ग्रामीण व्यवस्था या कृषि जैसे कार्यों से ही क्यों न हो, उनकी अवस्थिति नगरों में ही रखी गई है। नई यांत्रिक सभ्यता और व्यवस्था को बढ़ावा मिलने के कारण परंपरागत उद्योग-धंधे रह नहीं गए। परिणामस्वरूप गांवों के लोग भी शहरों की तरफ भागते हैं। वहां छोटे-मोटे धंधे पाकर वे शहरों के बाहर रहना बैठना शुरू करते हैं। फलस्वरूप शहर आस-पास के गांवों को भी अपने में लपेटने के लिए आगे चल देते हैं। वे तो चलते रहते हैं, फैलते रहते हैं, पर अनियोजित-अव्यवस्थति होने के कारण वही सब होता है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। शहरीकरण की प्रवृत्ति का एक और रूप भी है। वह यह कि अब कम से कम नगरों के आस-पास के दस-बीस मील के घेरे में बसे गांवों में गृह या कुटीर उद्योग लगाने की प्रवृत्ति और प्रोत्साहन। इस प्रकार के कार्य हैं तो अच्छे, किंतु नगरों की सहायता के बिना इनका संचालन हो पाना संभव नहीं हो पाता। सो स्वत: ही नगरों की अनेकानेक प्रवृत्तियां वहां भी पहुंचकर ठीक उन्हीं बुराइयों को जन्म दे रही है, जो वहां विद्यमान हैं। सरकारी तंत्र की दूरदर्शिता का अभाव भी कई बातों में नजर आता है। जैसे गांव के वातावरण में यांत्रिक सभ्यता का प्रचार-प्रसार का उनका शहरीकरण तो कर दिया जाता है, या बाद में वे सभी सुविधांए जारी नहीं रखी जाती या जारी रख पाना संभव नहीं होता जो आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप बिजली-पानी की व्यवस्था को ही लिया जा सकता है। इनकी शुरुआत कर

गांवों को भी शहरों जैसा बना तो दिया गया है, परंतु इस बनावट को जारी रख पाना संभव नहीं हो पा रहा। बिजली के साथ बाकी शहराती चीजें भी वहां पहुंचकर शहराती वातवरण को गहरा देती है। परंतु मांग के हिसाब से बिजली-पानी की आपूर्ति संभव नहीं हो पाती तब हाहाकार मचता है वहां का वह व्यक्ति जो पहले अभाव में भी जी लेता था, सब कुछ कर पाता था, अब उसकी आदत बिगड़ चुकी होती है। फलस्वरूप वह अपने-आपको शहरियों से भी बढक़र एकदम असहाय एंव निरीह अनुभव करने लगता है। इन चीजों की आंख-मिचौनी अंत में उसे एकदम बेकार करके रख देती है। तब जन्म होता है अन्य कई तरह के अनैतिक बीमारियों का, जिससे आज का समूचा जीवन पीड़ित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शहरीकरण की यह प्रवृत्ति अनेक तरह के अंत: बाह्य प्रदूषण का कारण बन रही है। सारा माहौल गंदा होता जा रहा है। यह प्रवृत्ति आदमी को सुविधाजीवी बनाकर एक सीमा तक निकम्मा भी कर रही है। इसका एक दुष्परिणाम और दुष्प्रभाव यह भी समाने आया है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु के योज्य नहीं है वह उसे सहज ही प्राप्त करके उसका दुरुपयोग ही नहीं कर रहा बल्कि उसके रंग-रूप तक को बिगाड़ रहा है। शहरीकरण की प्रवृत्ति और मानसिकता ने हमारे उचित-अनुचित, योज्य-अयोज्य होने के विवक तक को हर लिया है। उसी का यह परिणाम है कि आज सभी कुछ निरंदर प्रदूषित होता जा रहा है। प्रश्न उठता है कि आखिर इससे बचाव का उपाय क्या है?

बचाप का उपाय है शहरीकरण की प्रवृत्ति पर अंत:बाह्य हर प्रकार के अंकुश लगाना। कल-कारखाने ऐसे थानों पर लगने चाहिए जो बंजर हों और वर्तमान शहरों से दूर हों। वहां पर ऐसा माहौल रहे कि आदमी अपने असली रूप में रह और जी सके। केंद्र सरकार के कार्यालयों का भी विकेंद्रीकरण होना चाहिए ताकि शहरामें से दूर रहन ेवालों का कार्य विकेंद्रीकृत उचित स्थानों पर ही संभव हो सके। सम्यक एंव संपूर्ण आपूर्ति की व्यवस्था करने के बाद ही किसी स्थान का विद्यतीकरण और जलीकरण किया जाना चाहिए, ताकि लोग परंपरागत ढंग और साधनों से भी वंचित न हो जांए। योजनाओं का नियोजन एंव आयोजन स्थानीय साधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। कस्बों-शहरों के अनियंत्रित और अनियोजित विकास को कठोरतापूर्वक रोका जाना चाहिए। ऐसा करते हुए प्राकृतिक जीवन की रक्षा करना भी आवश्यक है। तभी हमारा जीवन अपने स्वाभाविक परिवेश में निर्देष रूप से व्यतीत हो सकेगा। शहरीकरण की प्रवृत्ति ने जीवन और समूचे व्यवहारों में जो कृत्रिमता ला दी है, उससे छुटकारा मिल सकेगा। यदि हम ऐसा नहीं कर सके, तो वह

दिन दूर नहीं जब शहरी कटरों के समान स्वच्छ और प्राकृतिक वातावरण वाले देहात भी गंदगी का ढेर बनकर रह जाएंगे। ऐसा दिन कभी नहीं आना चाहिए। उसका आना सांस्कृतिक दृष्टि से घातक परिणाम लाने वाला सिद्ध होगा।